© UNIVERSAL RESEARCH REPORTS | REFEREED | PEER REVIEWED
ISSN : 2348 - 5612 | Volume : 05 , Issue : 04 | January – March 2018

भारतीय आर्य भाषाओं का परिचय और वर्गीकरण

Sudesh Devi, Assistant Professor in Hindi
Indus Degree College Kinana, Email : sheoransudesh8@gmail.com

सार:

मानव भाषा के माध्मय से अपने विचारों का आदान-प्रदान करते हैं । भाषा मनुष्य मात्र की विशेषता है । भारत में हम कई भाषाएँ बोलते हैं - हिंदी, तमिल, बंगला, मणिपुरी, आसामी, आदि । ये भाषाएँ किस रूप में एक -दूसरे सम्बद्ध हैं ; यह जानने के लिए इसके प्राचीन इतिहास को जानने की आवश्यकता है । हिंदी भाषा और साहित्य का विकास क्रम प्राय: समान्तर चलता है । प्राचीनकाल (सन् 1300ई. से सन् 1500ई. तक) उस समय अपभ्रश तथा प्राकृतों का प्रभाव हिन्दी भाषा पर मौजूद था, साथ ही हिन्दी की बोलियों के निश्चित अथवा स्पष्ट रूप विकसित नहीं हुए थे । मध्यकाल (सन् 1500 ई. से 1800 ई.)तक अब हिन्दी उक्त प्रभाव से मुक्त हो गई थी और हिन्दी की बोलियाँ विशेष कर ब्रज और अवधी अस्तित्व में आ गई थीं। आदिकाल में राजस्थान की मारवाड़ी बोली, भक्तिकाल में तुलसीदास ने अवधी का एवं कृष्णभक्त कवियों ने ब्रजभाषा का प्रयोग किया । भक्तिकाल के पूर्व विद्यापति ने स्थानीय बोली मैथिली में अपने काव्य का सृजन किया । रीतिकाल में ब्रजभाषा का वर्चस्व रहा। इस प्रकार अलग -अलग समय में अलग-अलग बोलियों में साहित्य का सृजन हुआ । आधुनिककाल (सन् 1800 से अब तक) में हिन्दी की बोलियों के रूपों का परिवर्तन प्रारंभ हो गया ।

मुख्य शब्द: भाषा, ब्रजभाषा, विकास, साहित्य आदि।

परिचय:

आर्यों के भारत आगमन के समय इनकी भाषा ईरानी से अधिक भिन्न नहीं थी । भारत में आने वाले आर्यों के दल अपने साथ अपनी सुविकसित भाषा और यज्ञ-परायण संस्कृति भी लेकर आए । अगर हम प्राचीन ईरानी संस्कृति की ओर ध्यान दें तो मालूम पड़ता है कि भारत में प्रवेश करने से पूर्व ही आर्यों में इन्द्र, मित्र, वरुण आदि देवताओं की उपासना प्रचलित थी । भारत में बस जाने पर यज्ञों के विधि-विधान में विकास होता गया । आर्य कृषि देवताओं की प्रशंसा में सूक्तों की रचना करते रहे । यह सूक्त परम्परागत रूप से कृषि परिवारों में सुरक्षित रखे जाने लगे । बाद में विभिन्न कृषि परिवारों में सूक्तों का संग्रह किया गया । यह संग्रह ऋग्वेद संहिता के रूप में हुआ है । यज्ञों के विकास के साथ-साथ वैदिक वाङ्मय में विशेष वृद्धि होती गई । वैदिक साहित्य के अन्तर्गत तीन विभाग हैं -1) संहिता, 2) ब्राह्मण, 3) उपनिषद् । संहिता भाग में ऋक्संहिता के अतिरिक्त यजु: संहिता, साम संहिसा, एवं अथर्व संहिता हैं । यजु -संहिता में यज्ञों के कर्मकाण्ड में प्रयुक्त मंत्र संग्रहीत हैं । इसके मंत्र यज्ञों में प्रयोग के क्रम से रखे गए हैं और पद्य के साथ-साथ गद्य में भी अनेक मंत्र इसमें उपलब्ध होते हैं । यजु: - संहिता कृष्ण एवं शुक्ल इन दो रूपों में सुरक्षित है । कृष्ण यजुर्वेद संहिता में मंत्र भाग एवं गद्यमय व्याख्यात्मक भाग साथ-साथ संकलित किए गए हैं, परंतु शुक्ल यजुर्वद संहिता में केवल मंत्र भाग संग्रहित है । सामवेद संहिता में सोम यागों में गाये जाने वाले सूक्तों को गेय पदों के रूप में सजाया गया है । इसके अधिकांश सूक्त ऋग्वेद संहिता से लिए गए हैं । अथर्ववेद में जनसाधारण में प्रचलित मंत्र-तंत्र , टोटे - टोटकों का संकलन है । इसकी सामग्री ऋकसंहिता' की जैसी प्राचीन है परंतु चिरकाल तक वेद् के रूप में मान्यता प्राप्त न होने के कारण इसकी भाषा का प्राचीनतम रूप सुरक्षित नहीं रह सका । भारतीय आर्यभाषा का महत्व संसार की सभी भाषाओं में सार्वाधिक है। ये भाषाएं समृद्ध साहित्य व्याकरण के सम्मत रूप और प्रयोग आधार पर अपनी पहचान के साथ सामने आई है।

भारतीय आर्यभाषा का विभाजन:

भारतीय आर्यभाषा की पूरी श्रृंखला को 3 भागों में विभाजित किया जाता है-

1. प्राचीन भारतीय आर्यभाषाएं (प्रा0 भा0 आ0) - 1500 ई0 पँ0 से 500 ई0 पू0 तक।
2. मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषाएं (म0 भा0 आ0) - 500 ई0 से 1000 ई0 पू0 तक।
3. आधुनिक भारतीय आर्यभाषाएं (आ0 भा0 आ0) - 1000 ई0 सन् से अब तक।

प्राचीन भारतीय आर्यभाषाएँ:

इनका समय 1500 ई0 पू0 तक माना जाता है। वस्तुत: यह विवादास्पद विषय है। इस वर्ग में भाषा के दो रूप अपलब्ध होते है- (i) वैदिक या वैदिक संस्कृत, (ii) संस्कृत या लौकिक संस्कृत। इन दोनों का भी पृथक-पृथक परिचय अपेक्षित है।

वैदिक या वैदिक संस्कृत:

इसे 'वैदिक भाषा', 'वैदिकी', छान्द या 'प्राचीन संस्कृत' भी कहा जाता है। वैदिक भाषा का प्राचीनतम रूप ऋग्वेद में सुरक्षित है। यद्यपि अन्य तीनों संहिताओं, ब्राह्मणो-ग्रन्थों तथा प्राचीन उपनिषदों आदि की भाषा भी वैदिक ही है, किन्तु इन सभी में भाषा का एक ही रूप नहीं मिलता। 'ऋग्वेद' के दूसरे मण्डल से नौवें मण्डल तक की भाषा ही सर्वाधिक प्राचीन है। यह 'अवेस्ता' के अत्यधिक निकट है। शेष संहिताओं तथा अन्य ग्रन्थों में भाषा ही प्राचीनतम है, जिनमें आर्यो का वातावरण तत्कालीन पंजाब के वातावरण से मिलता-जुलता वर्णित है। इसी प्रकार वैदिक भाषा के दो अन्य रूप-दूसरा और तीसरा भी वैदिक साहित्य में मिलते हैं। दूसरे रूप मध्यदेशीय भारत का तथा तीसरे रूप पूर्वी भारत का प्रभाव लक्षित होता है। ज्ञात होता है कि वैदिक भाषा का प्रवाह अनेक शताब्दियों तक रहा होगा।

विद्वानों का विचार है कि वैदिक भाषा का जो रूप हमें आज वैदिक साहित्य, विशेषत: ऋग्वेद में मिलता है, वह तत्कालीन साहित्यक भाषा ही थी, बोलचाल की भाषा नहीं। तत्कालीन बोलचाल की भाषा को जानने का कोई साधन आज हमें उपलब्ध नहीं है। हाँ, साहित्यक वैदिक के आधार पर हम उसका कुछ अनुमान अवश्य ही कर सकते हैं।

वैदिक भाषा की विशेषताएँ:

प्रत्येक भाषा का अपना विशिष्ट स्वरूप होता है। प्रत्येक भाषा अपनी व्यक्तिगत विशेषताओं के कारण अपना पृथक् अस्तित्व रखती है। किसी भाषा की ऐसी विशेषताएँ ही उसे अन्य भाषाओं से पृथक् करती हैं। इस दृष्टि से वैदिक भाषा की कुछ महत्वपूर्ण विशेषताएं यहां प्रस्तुत हैं :-

1. वैदिक भाषा में स्वरों के स्व और दीर्घ उच्चारण के साथ ही उनका प्लुत उच्चारण भी होता है; जैसे, आसी त्, विन्दती इत्यादि।
2. वैदिक भाषा में 'लृ' स्वर का प्रयोग प्रचुर मात्रा में हुआ है।
3. वैदिक भाषा में संगीतात्मक स्वरघात का बहुत महत्व है। इसमें तीन प्रकार के स्वर हैं - उदात्त, अनुदात्त और स्वरित। वैदिक मंत्रों के उच्चारण में इनका ध्यान रखना अनिवार्य होता है। स्वर-परिवर्तन से शब्दों के अर्थों में भी परिवर्तन हो जाता है। 'इन्द्रशत्रु:' इसका प्रसिद्ध उदाहरण है। भाषा विज्ञान की दृष्टि से भी वैदिक भाषा की स्वराघात प्रधानता का बहुत महत्व है।

4. वैदिक भाषा की व्यद्रजन ध्वनियों में ळ् और ळह् दो ऐसी ध्वनियाँ हैं, जो उसे अन्य भाषा से पृथक् करती हैं; जैसे 'इळा', 'अग्निमीळे' आदि में।
5. प्राचीन वैदिक भाषा में 'ल्' के स्थान पर प्राय: 'र्' का व्यवहार मिलता है; जैसे - 'सलिल' के स्थान पर 'सरिर'।
6. वैदिक भाषा में सन्धि-नियमों में पर्याप्त शिथिलता दृष्टिगोचर होती है। अनेक बार सन्धि-योग्य स्थलों पर भी सन्धि नहीं होती और दो स्वर साथ-साथ प्रयुक्त हो जाते हैं; जैसे - 'तितउ' (अ, उ) 'गोओपशा' (ओ, औ)
7. वैदिक भाषा में शब्द रूपों में पर्याप्त अनेकरूपता मिलती है। उदाहरण के लिए प्रथमा विभक्ति, द्विवचन, 'देवा' और 'देवौ', प्रथमा विभक्ति बहुवचन में 'जना:' और जनास:, तृतीय विभक्ति बहुवचन में 'देवै:' और 'देवेभि:' दो-दो रूप मिलते हैं। यह विविधता अन्य रूपों में भी मिलती है।
8. यही विविधता धातुरूपों में भी उपलब्ध है। एक ही 'कृ' धातु के लट्-लकार, प्रथम पुरुष में- 'कृणुते', 'करोति', 'कुरुते', 'करति' आदि अनेक रूप मिलते हैं।
9. धातुओं से एक ही अर्थ में अनेक प्रत्यय लगते हैं। जैसे, एक ही 'तुमुन्' प्रत्यय के अर्थ में 'तुमुन्', 'से', 'सेन', 'असे', 'असेन्', 'कसे', 'कसेन्', 'अध्यै', 'अध्यैन्', 'कध्यै', 'कध्यैन', 'शध्यैन', 'शध्यैन्', 'तवै', 'तवैङ्', और 'तवैङ्', और 'तवेन्'- ये 16 प्रत्यय मिलते हैं।
10. वैदिक भाषा में उपसर्गों का प्रयोग स्वतन्त्रा रूप से होता था। उदाहरणार्थ अभित्वा पूर्वपीतये सृजामि'', (ऋग्वेद यहाँ 'अभि' उपसर्ग का प्रयोग 'सृजामि' क्रियापद से पृथक् स्वतन्त्रा रूप से हुआ है। इसी प्रकार ''मानु षान्-अभि'' (ऋ. 'अभि' स्वतन्त्रारूप से प्रयुक्त है।)
11. पदरचना की दृष्टि से वैदिक भाषा श्लिष्टयोगात्मक है। सम्बन्धतत्व (प्रत्यय) के जुड़ने पर यहां अर्थतत्व (प्रकृति) में कुछ परिवर्तन तो हो जाता है, किन्तु अर्थतत्व तथा सम्बन्धतत्व को पृथक्-पृथक् पहचाना जा सकता है। जैसे - 'गृहाणाम्', यहां 'गृह' प्रकृति तथा 'नाम्' प्रत्यय स्पष्ट रूप से पहचाने जाते हैं।

संक्षेप में, वैदिक भाषा में प्रयोगों की अनेकरूपता को देखने से प्रतीत होता है कि आज वैदिक भाषा का जो स्वरूप हमें उपलब्ध होता है, वह तत्कालीन अनेक बोलियों का मिला-जुला रूप है, जिनमें देश-भिन्नता तथा काल-भिन्नता, दोनों का ही होना संभव है। संभवत:, उस काल की जनसामान्य की विविध बोलियों का ही, हिन्दी में खड़ी बोली के समान, एक परिनिष्ठित साहित्यिक रूप वह वैदिक भाषा है, जो हमें आज 'ऋग्वेद' आदि में उपलब्ध होती है।

संस्कृत भाषा:

प्राचीन भारतीय आर्यभाषा का दूसरा 'संस्कृत' है। इसी को 'लौकिक संस्कृत' या 'क्लासिकल संस्कृत' भी कहा जाता है। यूरोप में जो स्थान 'लैटिन' भाषा का है, वही स्थान भारत में संस्कृत का है। भारत में 'रामायण' 'महाभारत' से भी पहले से लेकर आज तक संस्कृत में साहित्य रचना हो रही है। गुप्तकाल में संस्कृत की सर्वाधिक उन्नति हुई थी। इसका साहित्य विश्व के समृद्धतम साहित्यों में से एक है। 'वाल्मीकि', 'व्यास', 'कालीदास', आदि इसकी महान् विभूतियाँ हैं। विश्व-विख्यात महाकवि कालीदास का 'अभिज्ञान-शाकुन्तलम्' नाटक संस्कृत भाषा श्रृंगार है। विश्व की अनेक भाषाओं में संस्कृत के अनेक ग्रन्थों का अनुवाद हुआ है।

भाषा विज्ञान की दृष्टि से संस्कृत का महत्व बहुत अधिक है। संस्कृत के अध्ययन के कारण ही यूरोप में आधुनिक युग में 'तुलनात्मक भाषा विज्ञान' का प्रारम्भ हुआ है।

संस्कृत का विकास उत्तरी भारत में बोली जाने वाली वैदिककालीन भाषा से माना जाता है, यद्यपि भारत के मध्य भाग तथा पूर्वी भाग की बोलचाल की भाषाओं का प्रभाव भी उसपर रहा होगा। लगभग 8 शताब्दी ईपू. में इसका प्रयोग साहित्य में होने लगा था। यह वह अवस्था है, जब संस्कृत की आधारभूत भाषा का प्रयोग बोलचाल की भाषा और साहित्यिक भाषा दोनों के रूप में हो रहा था। अनुमान किया जाता है कि लगभग ई. पू. 5 वीं शताब्दी या कुछ क्षेत्रों में उसके बाद तक संस्कृत की आधारभूत यह भाषा बोली जाती थी और तब तक उत्तर भारत में कई अन्य ऐसी बोलियाँ भी जन्म ले चुकी थीं, जिनसे आगे चलकर अनेक प्राकृतों, अपभ्रंश तथा आधुनिक आर्यभाषाओं का विकास हुआ है।

लगभग ई. पू. 5 वीं शताब्दी या 7 वीं शताब्दी में 'पाणिनी' ने संस्कृत की उस आधारभूत भाषा को व्याकरण के नियमों से बद्ध करके एकरूपता प्रदान की ओर यह भाषा 'संस्कृत' कहलाने लगी। अर्थात् अपने स्वाभाविक विकास के कारण, नियन्त्रण के हिन्दी भाषा की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि अभाव में जो भाषा प्राकृत (विकृत) रूप में चल रही थी, वह तब 'संस्कृत' हो गयी। उसका संस्कार कर दिया गया, उसे शुद्ध रूप प्रदान कर दिया गया। इस प्रकार स्पष्ट है कि जिस काल में 'संस्कृत' साहित्यिक भाषा का रूप ग्रहण कर रही थी, उस समय भारत में स्वयं साहित्यिक संस्कृत की आधारभँत बोली तथा उससे मिलती-जुलती कई अन्य बोलियाँ भी व्यवहार में थी, किन्तु उन सबमें 'संस्कृत' ही शिष्ट, साहित्यिक या राष्ट्रभाषा के रूप में प्रयुक्त होती थी।

संस्कृत भाषा की विशेषताएँ:

संस्कृत, लौकिक संस्कृत वा क्लास्किल संस्कृत की सबसे प्रमुख विशेषता पाणिनिकृत नियमबद्धता है। संस्कृत की विशेषता ही उसे वैदिक से पृथक् करती है। जैसाकि पहले उल्लेख किया जा चुका है, वैदिक भाषा में शब्दरूपों तथा क्रिया-रूपों की विविधता है, सन्धि-नियमों आदि में भी पर्याप्त शिथिलता है। एक ही अर्थ में विभिन्न प्रत्ययों का प्रयोग है, आदि-आदि। इन सब के साथ ही वैदिक भाषा में अपवादों की संख्या भी बहुत अधिक है तथा भाषा में स्वच्छन्दता की प्रवृति दृष्टिगोचर होती है।

इसके विपरीत, संस्कृत या लौकिक संस्कृत बहुत ही नियमबद्ध तथा नियिन्त्रात है।

मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषाएँ:

लौकिक संस्कृत एक तरफ व्याकरण का आधार पाकर अपने निश्चित रूप में स्थिर हो गई, तो दूसरी तरफ लोक-भाषा तेजी से विकसित हो रही थी। इसी विकास के परिणामस्वरूप प्राकृत भाषा का विकास-काल ईपू. 500 से 1000 ई. माना जाता है। मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषाओं के तीन रूप स्पष्ट दिखाई देते हैं-

1. **पाली:** यह प्राकृत का प्रारम्भिक रूप है जिसका समय 500 ई0 पू0 के प्रथम शताब्दी के प्रारम्भ तक माना गया है। इसकी उत्पत्ति के विषय में विद्वानों में मतभेद हैं। कुछ विद्वानों का कहना है कि संस्कृत की उत्पत्ति प्राकृत से हुई है।

एक अन्य मत के अनुसार संस्कृत के समानान्तर, लोकभाषा से इसका उद्भव हुआ है। इसमें प्रथम मन्तव्य अधिक उपयुक्त लगता है।

2. **प्राकृत:** इसे द्वितीय प्राकृत और साहित्यिक प्राकृत भी कहते हैं। इसका काल प्रथम शताब्दी से 5वीं शताब्दी तक है। विभिन्न क्षेत्रों में इसके भिन्न-भिन्न रूप विकसित हो गये थे।
3. **मागधी:** इसका विकास मगध के निकटवर्ती क्षेत्र में हुआ। इसमें कोई साहित्यिक कृति उपलब्ध नहीं है।
4. **अर्ध—मागधी:** यह मागधी तथा शौरसेनी के मध्य बोली जाने वाली भाषा थी। यह जैन साहित्य की भाषा थी। भगवान महावीर के उपदेश इसी में है।
5. **महाराष्ट्री:** इसका मँल स्थान महाराष्ट है। इसमें प्रचुर साहित्य मिलता है। गाहा सत्तसई (गाथा सप्तशती), गडवहो (गौडवध:) आदि काव्य ग्रन्थ इसी भाषा में है।
6. **पैशाची:** इसका क्षेत्र कश्मीर माना गया है। ग्रियर्सन ने इसे दरद से प्रभावित माना है। साहित्यक रचना की दृष्टि से यह भाषा शून्य है।
7. **शौरसेनी:** यह मध्य की भाषा थी। इसका केन्द्र मथुरा था। नाटकों में स्त्र ी-पात्रों के संवाद इसी भाषा में होते थे। दिगम्बर जैन से सम्बधित धर्मग्रन्थ इसी में रचे गए हैं।
8. **अपभ्रंश:** इसका शाब्दिक अर्थ है - विकृत या भ्रष्ट। इसका प्राचीनतम रूप भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में मिलता है। कालिदास के विक्रमोर्वशीय नाटक के चतुर्थ अंक में अपभ्रंश के कुछ पद मिलते हैं। अपभ्रंश में अनेक महत्वपूर्ण रचनाएं हुई हैं; यथा- विद्यापति कृत कीर्तिलता, अद्दहमाण कृत संदेश-रासक आदि। इसका समय 500 ई. से 1000 ई. तक माना जाता है, किन्तु इसमें कुछ एक रचनाएं 14वीं और 15वीं शताब्दी तक होती रही हैं।

आधुनिक भारतीय भाषाओं का परिचय:

आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं का उद्भव 1000 ई. के लगभग हुआ है। इस वर्ग की भाषाओं का काल तब से अब तक माना गया है। इस काल में प्रयुक्त भाषाओं की गणना आधुनिक भारत आर्यभाषाओं में की जाती है। इस वर्ग की भाषाओं के विकास के कुछ समय पश्चात् से सम्बन्धित साहित्य प्राप्त होता है। आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं का विकास अपभ्रंश के विभिन्न रूपों में हुआ है। इसलिए इन दोनों वर्गों की भाषाओं में पर्याप्त समता है और अनेक भिन्न विशेषताओं का भी विकास हुआ है। इस वर्ग की भाषाओं की कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं, जिनके आधार पर इन्हें अन्य वर्ग की भाषाओं से अलग कर सकते हैं।

आधुनिक भारतीय आर्य भाषाएं:

आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का विकास अपभ्रंश के विभिन्न रूपों से हुआ है। इस संदर्भ में अपभ्रंश के सात रूप उल्लेखनीय हैं।

1. शौरसेनी - पश्चिमी हिन्दी, गुजराती, राजस्थानी
2. महाराष्टी - मराठी
3. मागधी - बिहारी, बंगला, उड़ीया, असमी
4. अर्ध मागधी - पूर्वी हिन्दी
5. पैशाची - लहंदा, पंजाबी

6. ब्राचड़ - सिन्धी
7. खस - पहाड़ी

आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का वर्गीकरण:

विश्व के समस्त भाषा-कुलों में भारतीय भाषाकुल का और इसमें भारतीय आर्य भाषाओं का विशेष महत्व है। प्राचीन भारतीय आर्य भाषा से मध्ययुगीन भारतीय, आर्य भाषाओं का उद्भव और उससे आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का विकास हुआ है। वर्तमान समय की आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में पर्याप्त विकास हुआ है। इसकी विभिन्न शाखाओं में भरपूर साहित्य रचना हो रही है। इस तथ्य को ध्यान में रखकर इस परिवार की विभिन्न भाषाओं का वर्गीकरण किया गया है। वर्गीकरण प्रस्तुत करने वाले मुख्य भाषा-वैज्ञानिक हैं-हार्नलें, बेबर, ग्रियर्सन, डॉ0 सुनीति कुमार चटर्जी, डॉ0 धीरेन्द्र वर्मा, श्री सीताराम चतुर्वेदी, डॉ0 भोलानाथ तिवारी आदि।

निष्कर्ष:

भारत में प्रवेश करने वाले आर्यों के विभिन्न दलों की भाषा में कुछ-कुछ भिन्नता अवश्य थी परन्तु उनमें साहित्यिक भाषा का एक सर्वमान्य स्वरूप विकसित हो गया था । इसी साहित्यिक भाषा में ऋग्संहिता के सूक्तों की रचना हुई ।॥ सूक्त ग्रंथों के रचनाकाल का समय लगभग 700ई.पू. है । इसमें भाषा के विकसित रूप(साहित्यिक रूप) के दर्शन होते हैं । इसी भाषा का उत्तरी रूप अपेक्षाकृत परिनिष्ठित एवं पंडितों में मान्य रूप था |इस रूप को पाणिनि ने पाँचवी शताब्दी में नियमबद्ध किया जो हमेशा के लिए लौकिक संस्कृति का सर्वमान्य आदर्श रूप बन गया । दीर्घकाल तक ये सृक्त श्रुति परम्परा से कृषि परिवारों में सुरक्षित रखे जाते रहे । परन्तु जैसे -जैसे सूक्तों की भाषा से बोलचाल की भाषा की भिन्नता बढ़ती गई वह और दुर्बोध होने लगी, वैसे-वैसे इसके प्राचीन रूप को सुरक्षित रखने के लिए संहिता के प्रत्येक पद को संधि रहित अवस्था में अलग-अलग कर पदपाठ बनाया गया तथा पद-पाठ से संहिता-पाठ बनाने के नियम निर्धारित किए गए और प्रत्येक वेद की विभिन्न शाखाओं के प्रातिशाख्यों की रचना हुई । प्रातिशाख्यों में अपनी -अपनी शाखा के अनुरूप वर्ण-विचार, उच्चारण - विधि, पदपाठ से संहिता बनाने की विधि आदि विषयों पर पूर्ण रूप से विचार किया गया । पाणिनि द्वारा संस्कृत भाषा को व्याकरण के नियमों में बाँध दिए जाने पर बोलचाल की भाषा, प्राकृत तथा आधुनिक भारतीय भाषाओं के रूप में विकास करती चली गई । आगे चल कर संस्कृत भाषा बोलचाल की भाषा न रहने पर भी कुछ परिवर्तित होती रही, जिसकी झलक रामायण, महाभारत, पुराण -साहित्य और कालिदास के काव्यों में मिलती है । इस प्रकार प्राचीन आर्य भाषा के दो रूप हैं - वैदिक संस्कृत और लौकिक संस्कृत ।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची:

[1] अनुवाद विज्ञान और सम्प्रेषण; हरिमोहन; तक्षशिला प्रकाशन, दिल्ली, 1984।
[2] अनुवाद विज्ञान; राजमणि शर्मा; वाणी प्रकाशन; दिल्ली, 2002।
[3] आधुनिक भाषा विज्ञान के सिद्धान्त; रामकिशोर शर्मा; लोकभारती प्रकाशन; इलाहाबाद 1998।
[4] आधुनिक भाषाविज्ञान; कृपाशंकर सिंह एवं चतुर्भुज सहाय; नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली,1997।

[5] आधुनिक भाषाविज्ञान; राजमणि शर्मा; वाणी प्रकाशन; दिल्ली 1996।

[6] देवनागरी लेखन तथा हिन्दी वर्तनी; लक्ष्मीनारायण शर्मा; केन्द्रीय हिन्दी संस्थान; आगरा, 1976।